International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(6): 200-202

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(6): 200-202
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-08-2022
Accepted: 16-10-2022

डॉ. वेदमित्र आर्य
असिस्टेंट प्रोफेसर (तदर्थ) संस्कृत-विभाग, मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Corresponding Author:
डॉ. वेदमित्र आर्य
असिस्टेंट प्रोफेसर (तदर्थ) संस्कृत-विभाग, मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

जैनेन्द्रव्याकरण का वैशिष्ट्य: संज्ञा-प्रकरण के सन्दर्भ में

डॉ. वेदमित्र आर्य

प्रस्तावना

पाणिनि परवर्ती व्याकरण परम्परा में जैनेन्द्र व्याकरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्य परवर्ती वैयाकरणों के तुल्य आचार्य देवनन्दी भी पाणिनीय व्याकरण का ही अनुकरण करते हैं तथापि संज्ञाओं के सन्दर्भ में आचार्य ने प्राय: पूर्व प्रचलित पाणिनीय संज्ञाओं का परित्याग कर अपने व्याकरण शास्त्र में मौलिक संज्ञाओं का ही विधान किया है।

"संज्ञा खलु नाममात्र कथनम् " अर्थात् सामान्य रूप से नाम मात्र का कथन संज्ञा कहलाता है परन्तु वैयाकरणों की दृष्टि में जो साक्षात् शक्ति का ग्राहक हो वह संज्ञा नाम से अभिहित होता है। " साक्षात् शक्तिग्राहकत्वं संज्ञासूत्रत्वम् ।"

लोक में लाघव के लिए संज्ञाओं का प्रयोग देखा जाता है अत: व्याकरण शास्त्र में भी लघुता एवं सरलता से शास्त्रप्रवृत्ति हेतु संज्ञाओं का विधान किया गया है। [1]

इन संज्ञाओं के माध्यम से व्याकरण शास्त्र में प्रवेश पाना अत्यन्त सरल हो जाता है। शास्त्र में कुछ सूत्र द्वारा विस्तृत अर्थ को प्रकट करने के लिए एक पारिभाषिक संज्ञा का विधान किया जाता है एवं शास्त्र में जहाँ–जहाँ उस अर्थ को ग्रहण करना इष्ट होता है वहाँ-वहाँ उस लघुकाय संज्ञा से कार्य सिद्ध किया जाता है। [2]

संज्ञाओं को अर्थ की दृष्टि से दो प्रकार से विभक्त किया जा सकता है – सार्थक एवं अनर्थक ।

सार्थक संज्ञएँ वे होती हैं जो व्याकरणात्मक कार्य के साथ–साथ अर्थगौरव को भी वहन करती हैं । यथा- सवर्ण, स्वर, लोप, गुरु इत्यादि तथा अनर्थक संज्ञाएँ वे होती हैं, जिनका औचित्य केवल व्याकरणात्मक कार्य सिद्ध करना है अर्थ का संकेत करना नहीं । यथा- टि, घि, लट्, लोट् इत्यादि ।

आचार्य देवनन्दी ने भी उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शास्त्रप्रवृत्ति के लिए पाणिनि आदि पूर्वाचार्यों की भाँति संज्ञाओं का विधान किया है। आचार्य ने पाणिनीय अष्टाध्यायी को आधार मानकर उसे पञ्चाध्यायी में परिवर्तन करते समय प्रातिपदिक, धातु, प्रत्यय आदि पाणिनीय अन्वर्थ महासंज्ञाओं को शास्त्रलाघव की दृष्टि से बीजगणित के जैसे अतिसंक्षिप्त संकेतों में परिवर्तित कर दिया है। यथा-

अनुनासिक (अष्टा. १.१.८) - ङ - नासिक्यो ङ: । जै. व्या. १.१.४ आचार्य देवनन्दी ने इस सूत्र के द्वारा पाणिनीय अनुनासिक के स्थान पर नासिका से उच्चरित वर्णों की " ङ " संज्ञा का विधान किया है।

पाणिनीयेतर शाकटायन, भोज आदि अन्य आचार्यों ने पाणिनि के तुल्य अनुनासिक संज्ञा का ग्रहण किया है।

प्रातिपदिक (अष्टा. १.२.४५) – मृत् - अधुमृत् । जै. व्या. १.१.५ पाणिनीय प्रातिपदिक के स्थान पर आचार्य ने धातु वर्जित अर्थवान शब्दों की " मृत " संज्ञा का विधान किया है। आचार्य वोपदेव ने प्रातिपदिक संज्ञा को " लि" [3] संज्ञा के रूप में तथा मलयस्वामी ने " नाम " [4] संज्ञा के रूप में परिवर्तन किय है।

अव्यय (अष्टा. १.१.३७-४१) - झि - असंख्यं झि: । जै. व्या. १.१.७४ पाणिनीय अव्यय संज्ञा के स्थान पर आचार्य देवनन्दी ने एकत्वादि संख्या से रहित असंख्य पदों की " झि " संज्ञा का विधान किया है। आचार्य वोपदेव ने अव्यय संज्ञा के स्थान पर " व्य " संज्ञा का प्रयोग किया है । [5]

धातु (अष्टा. १.३.१) - धु - भूवादयो: धु: । जै. व्या. १.२.१ आचार्य देवनन्दी ने पाणिनीय धातु संज्ञा के स्थान पर भू इत्यादि शब्दों की " धु " संज्ञा करते हैं। आचार्य वोपदेव ने भी आचार्य देवनन्दी का अनुकरण करते हुए " धु " संज्ञा का विधान किया है। [6]

ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत (अष्टा.१.२.२७) - प्र,दी, प - आकालोऽच् प्रदीप: । जै. व्या. १.१.११ आचार्य देवनन्दी ने ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत के स्थान पर अ, आ, आ३ के काल के समान जिन अच् का काल है उनकी क्रमश: प्र, दी एवं प संज्ञा किया है ।

समास अष्टा. (२.१.३) - स - स: । जै. व्या. १.३.२ आचार्य ने समास पद से केवल आदि वर्ण "स" को ग्रहण करते हुए पाणिनीय समास संज्ञा के स्थान " स " संज्ञा का विधान किया है। परवर्ती वैयाकरण आचार्य वोपदेव ने भी समास के लिए " स " संज्ञा का ही प्रयोग किया है। [7]

संयोग (अष्टा. १.१.७) - स्फ - हलोऽनन्तरा: स्फ: । जै. व्या. १.१.३ आचार्य देवनन्दी ने पाणिनीय संयोग संज्ञा के स्थान पर स्वरों के व्यवधान से रहित हलों की " स्फ " संज्ञा किया है । आचर्य वोपदेव ने पाणिनीय संयोग संज्ञा के स्थान पर " स्य " संज्ञा का विधान किया है। [7]

सवर्ण (अष्टा. १.१.९) - स्व - सस्थानक्रियं स्वम् । जै. व्या. १.१.२ आचार्य ने इस सूत्र के माध्याम से पाणिनीय सवर्ण संज्ञा के स्थान पर सस्थानक्रिया अर्थात् ताल्वादि समान स्थान से उच्चरित वर्णों की " स्व " संज्ञा का विधान किया है।

परस्मैपद (अष्टा. १.४.९९) - म - लो मम् । जै. व्या. १.२.१५० आचार्य ने उपर्युक्त सूत्र के माध्यम से " परस्मैपद " इस पाणिनीय संज्ञा को परिवर्तित कर लकर के स्थान पर आदेश होने वाले तिप्, तस्, झि आदि प्रत्ययों की " म " संज्ञा किया है। परवर्ती आचार्य वोपदेव ने परस्मैपद के स्थान पर " पम् " संज्ञा का प्रयोग किया है। [8]

आत्मनेपद (अष्टा. १.४.१००) - द - इङानं द: । जै. व्या. १.२.१५१ आचर्य ने पाणिनीय आत्मनेपद के स्थान पर " इङ" अर्थात् इट्, वहि, महि आदि एवं आन की " द " संज्ञा किया है। परवर्ती आचार्य वोपदेव पाणिनीय आत्मनेपद संज्ञा के लिए " म " संज्ञा का विधान करते हैं। [9]

आचर्य देवनन्दी ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण पाणिनीय संज्ञाओं को भी " अर्धमात्रा लाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा: ।" इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए शास्त्रलाघव की दृष्टि से पञ्चाध्यायी में अतिसंक्षिप्त रूप में परिवर्तित किया है। यथा –

लोप (अष्टा. १.१.६०) - ख - नाश: खम् । जै. व्या. १.१.६१ पाणिनीय लोप संज्ञा के स्थान पर " ख " संज्ञा का विधान किया गया है।

वृद्धि (अष्टा. १.१.१) - ऐप् - आदैगैप् । जै. व्या. १.१.१५ पाणिनीय वृद्धि संज्ञा को " ऐप् " संज्ञा के रूप में परिवर्तित किया गया।

गुण (अष्टा. १.१.२) - एप् - अदेङेप् । जै. व्या. १.१.१६ पाणिनीय गुण संज्ञा को " एप् " संज्ञा के रूप में परिवर्तित किया गया।

उपधा (अष्टा. १.१.६५) - उङ् - उपान्त्यालुङ् । जै. व्या. १.१.६६ पाणिनीय उपधा संज्ञा के स्थान पर " उङ् " संज्ञा का प्रयोग किया गया ।

निपात (अष्टा. १.४.५६,५७) - नि - नि : । जै. व्या. १.२.१२७ पाणिनीय निपात संज्ञा के स्थान पर " नि " संज्ञा का प्रयोग किया गया ।

उपसर्ग (अष्टा. १.४.५९) - गि - क्रियायोगे गि । जै. व्या. १.२.१३० पाणिनीय उपसर्ग संज्ञा को " गि " संज्ञा के रूप में परिवर्तित किया गया।

सम्बुद्धि (अष्टा. २.३.४९) - कि - एक: कि : । जै. व्या. १.४.५६ पाणिनीय सम्बुद्धि संज्ञा के स्थान पर " कि " संज्ञा का विधान किया गया है।

लघु (अष्टा. १.४.१०) - घि - प्रो घि च । जै. व्या. १.२.९९ पाणिनीय लघु संज्ञा के लिए " घि " संज्ञा का प्रयोग किया गया ।

गुरु (अष्टा. १.४.११) - रु - स्फे रु: । जै. व्या. १.२.१०० पाणिनीय गुरु संज्ञा के स्थान पर " रु " संज्ञा का विधान किया गया है।

प्रगृह्य (अष्टा. १.१.११) - दि - ईदूदेद् द्विर्दि: । जै. व्या. १.१.२० पाणिनीय प्रगृह्य संज्ञा को "दि " संज्ञा के रूप में परिवर्तित किया गया।

आचार्य देवनन्दी ने पाणिनीय प्रथम, मध्यम एवं उत्तम पुरुष [9] के स्थान पर सरलता एवं स्पष्टता के लिए ही क्रमश: अन्य, युष्मद् एवं अस्मद् संज्ञाओं का विधान किया है। [10] पाणिनीय व्याकरण के तुल्य ही जैनेन्द्र व्याकरण में भी सुप् के तीन- तीन समुदायों की विभक्ति संज्ञा होती है। [11] परन्तु उन विभक्तियों की प्रथमादि संज्ञा न करके उनके स्थान पर क्रमश: वा, इप्,भा, अप्, का, ता, ईप् ये संज्ञाएँ की गयी है। [12] यथा- "कर्मणीप्" [13] अर्थात् अनुक्त कर्म कारक में इप् (द्वितीया) विभक्ति होति है।

पाणिनीय व्याकरण - जैनेन्द्र व्याकरण [14]

1. प्रथमा - वा
2. द्वितीया - इप्
3. तृतीया - भा
4. चतुर्थी - अप्
5. पञ्चमी - का
6. षष्ठी - ता
7. सप्तमी - ईप्

पाणिनीय एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन के स्थान पर जैनेन्द्र व्याकरण में शास्त्रलाघाव के उद्देश्य से क्रमश: एक, द्वि एवं बहु संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। " सुपश्च " [15] अर्थात् सुप के त्रिकों की एक, द्वि एवं बहु संज्ञाएँ होती है। आचार्य देवनन्दी ने जैनेन्द्र व्याकरण में पाणिनीय व्याकरण के तुल्य ही समास प्रकरण का विस्तार पूर्वक अन्वाख्यान किया है। परन्तु पाणिनीय समास, अव्ययीभाव, तत्पुरुष आदि संज्ञाओं के लिए अतिसंक्षिप्त स, ष आदि संकेतों का ही प्रयोग किया है। यथा -

पाणिनीय व्याकरण - जैनेन्द्र व्याकरण

1. समास - स, स: । १.३.२
2. तत्पुरुष - ष, षम । १.३.१९
3. अव्ययीभाव - ह, ह: । १.३.४
4. कर्मधारय - य, पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलं यश्चैकाश्रये । १.३.४४
5. द्विगु - र, संख्यादी रश्च । १.३.४७
6. बहुव्रीहि - ब, अन्यपदार्थेऽनेकं बम् । १.३.८६

आचार्य देवनन्दी ने जैनेन्द्र व्याकरण में यद्यपि अधिकतर पाणिनीय संज्ञाओं के स्थान पर निरर्थक संकेतों का ही प्रयोग किया है तथापि कुछ ऐसी संज्ञाएँ भी हैं जिसे आचार्य ने पाणिनि से अक्षरश: ग्रहण किया है। यथा-

पाणिनीय व्याकरण - जैनेन्द्र व्याकरण

1. इत् १.३.२ - इत् १.२.३
2. टि १.१.६४ - टि १.२.६५
3. पद १.४.१४ - पद १.२.१०३
4. द्वन्द्व २.२.२९ - द्वन्द्व १.३.९२
5. कृत ३.१ ९३ - कृत २.१.८०

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य देवनन्दी यद्यपि अपने पूर्ववर्ती आचार्य पाणिनि से प्रभावित है तथापि संज्ञओं के प्रसङ्ग में उन्होंने "अर्धमात्रा लाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा: ।" इस कथन का अनुपालन करते हुए पारिभाषिक पाणिनीय संज्ञाओं के लिए स, ह, य आदि अतिसंक्षिप्त सांकेतिक संज्ञाओं का ही प्रयोग अपने व्याकरणशास्त्र में किया है। केवल कुछ स्थलों पर ही इत्, टि आदि पाणिनीय संज्ञाओं को ग्रहण किया है ।

संदर्भ

1. संज्ञा च नाम यतो न लघीय:। कुत: एतत् ? लघ्वर्थं हि संज्ञाकरणम् । महाभाष्य -१.१.२७
2. कार्यकालं संज्ञापरिभाषाम् । महाभाष्य – १.१.११
3. मुग्धबोध-व्याकरण - १४
4. मलय. सं. २/२
5. मुग्धबोध-व्याकरण - ९४
6. मुग्धबोध-व्याकरण - ११
7. मुग्धबोध-व्याकरण - ३१७
8. मुग्धबोध-व्याकरण - ९५
9. मुग्धबोध-व्याकरण - ५३१
10. मुग्धबोध-व्याकरण - ५३१.
11. शेषे प्रथम: । अष्टा. १.४.१०८, युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम:। अष्टा. १.४.१०५ अस्मद्युत्तम: । अष्टा. १.४.१०७
12. मिङस्त्रिशोऽस्मद्युस्मदन्या: । जै. व्या. १.२.१५२
13. विभक्ति । जै. व्या. १.२.१५७
14. तासामाप्यरास्तद्धलच। जै. व्या. १.२.१५८
15. जै. व्या. १.४.२
16. वा इप् भा अप् का ता ईप् इति एता: संज्ञा:। जै. व्या. महावृत्ति १.२.१५८
17. जै. व्या. १.२.१५६